सरल प्रेमचन्द
गुल्लीडंडा

# गुल्ली-डंडा



प्रेमचन्द





समाज शिक्षा प्रकाशन
2702 लोथियान रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

मूल्य : पंद्रह रुपये (15.00)

संस्करण : 2002 © प्रकाशक

GULLI-DANDA (Short Stories) Premchand

**समाज शिक्षा प्रकाशन, 2702 लोथियान रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-**

# गुल्ली-डंडा

हमारे अंग्रेज़ीदां दोस्त मानें, या न मानें मैं तो यही कहूंगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। जब भी कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूं, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूं, न लॉन की ज़रूरत न कोर्ट की, न नेट की न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गये, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महंगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैंकड़ा न खर्च कीजिये, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यहां गुल्ली-डंडा है कि बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अंग्रेज़ी चीज़ों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीज़ों से अरुचि हो गयी है। हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खिलायें, जो बिना दाम-कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेज़ी खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मंढ़ते हो। ठीक है, गुल्ली से आंख फूट जाने का भय रहता है तो क्या क्रिकेट से सिर टूट जाने, तिल्ली फट जाने, टांग

टूट जाने का भय नहीं रहता ? अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह अपनी-अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियां काटना और गुल्ली-डंडे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खिलाड़ियों के जमघट, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई-झगड़े, वह सरल स्वभाव, जिसमें छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोंचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाइश न थी, यह उसी वक्त भूलेगा जब... जब। घरवाले बिगड़ रहे हैं, पिताजी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं, अम्मां की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचारधारा में मेरा अन्धकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूं कि पदाने में मस्त हूं, न नहाने की सुधि है न खाने की। गुल्ली है तो ज़रा-सी पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लंबा, बन्दरों की-सी लम्बी-लम्बी, पतली-पतली उंगलियां, बन्दरों की-सी ही चपलता, वही झल्लाहट। गुल्ली कैसी भी हो, उस पर इस तरह से लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके मां-बाप थे या नहीं, कहां रहता था, क्या खाता था, पर था हमारे गुल्ली-क्लब का चैम्पियन। जिसकी तरफ वह आ

जाय, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर से आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयां बना लेते थे।

एक दिन हम और गया दो ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था; मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है; मैंने गला छुड़ाने के लिए सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र-विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपने दांव लिए बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला–मेरा दांव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बनके, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो ?

'तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूं ?'

'हां ! तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊं न पीने जाऊं ?'

'हां ! मेरा दांव दिये बिना कहीं नहीं जा सकते।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूं ?'

'हां, मेरे गुलाम हो।'

'घर जाता हूं, देखूं मेरा क्या कर लेते हो।'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है, दांव दिया है, दांव लेंगे।'

'अच्छा कल मैंने अमरूद खिलाया था वह लौटा दो।'

'वह तो पेट में चला गया।'

'निकालो पेट से, तुमने क्यों खाया मेरा अमरूद ?'

'अमरूद तुमने दिया, तब मैंने खाया। मैं तुमसे मांगने न गया था।'

'जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दांव न दूंगा।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। जब गया ने अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दांव लेने का क्या अधिकार है ! रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं। वह मेरा अमरूद यों ही हज़म कर जायेगा ? अमरूद पैसे के पांच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा—मेरा दांव देकर जाओ, अमरूद-समरूद मैं नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता था। मैंने गाली दी, उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली ही नहीं, दो-एक चांटा जमा दिया। मैंने उसे दांत काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरन्त आंसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हंसता हुआ घर जा पहुंचा। मैं थानेदार का लड़का, एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमान-जनक मालूम हुआ; लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

उन्हीं दिनों पिताजी का वहां से तबादला हो गया। नई

दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछड़ जाने का बिलकुल दुःख न हुआ। पिताजी दुःखी थे। यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्मांजी भी दुःखी थीं, यहां सब चीज़ें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घरावसा हो गया था; लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से जींट उड़ा रहा था, वहां ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे-ऐसे ऊंचे घर हैं कि आसमान से बात करते हैं। वहां के अंग्रेज़ी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे तो उसे जेल हो जाय। मेरे मित्रों की फैली हुई आंखें और चकित-मुद्रा बतला रही थीं कि मैं उनकी निगाह में कितना ऊंचा उठ गया हूं। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे–तुम भागवान हो भाई, जाओ, हमें तो इसी ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुजर गये। मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुंचा और डाकबंगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल-स्मृतियां हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आंखें किसी प्यासे पथिक की भांति बचपन के उन क्रीड़ा-स्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थीं, पर उस परिचित नाम के सिवा वहां और कुछ परिचित न था। जहां खंडहर था, वहां पक्के मकान खड़े थे। जहां बरगद का पुराना पेड़ था, वहां अब एक सुन्दर बगीचा था। स्थान की काया पलट हो गयी थी। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान

न होता, तो मैं इसे पहचान भी न सकता। बचपन की संचित और अमर स्मृतियां बांहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं, मगर वह दुनिया बदल गयी थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊँ और कहूं–तुम मुझे भूल गयीं ! मैं तो अब भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूं।

सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो-तीन लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए मैं अपने को बिल्कुल भूल गया कि मैं एक ऊँचा अफसर हूं, साहबी ठाठ में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा–क्यों बेटे, यहां कोई गया नाम का आदमी रहता है ?

एक लड़के ने गुल्ली-डंडा समेटकर सहमे हुए स्वर में कहा–कौन गया ? गया चमार ?

मैंने यों ही कहा–हां-हां वही। गया नाम का कोई आदमी है तो, शायद वही हो।

हां, वही तो।'

'ज़रा उसे बुला ला सकते हो ?'

लड़का दौड़ा गया और एक क्षण में एक पांच हाथ के काले देव को साथ लिए आता दिखाई दिया। मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊं; पर कुछ सोचकर रह गया।

बोला–कहो गया, मुझे पहचानते हो ?

गया ने झुककर सलाम किया–हां मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं ? आप मजे में रहे ?

'बहुत मजे में। तुम अपनी कहो ?'

'डिप्टी साहब का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा यह सब कहां हैं ? कुछ खबर है ?'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन दोनों डाकिये हो गये हैं। आप ?'

'मैं तो जिले का इंजीनियर हूं।'

'सरकार तो पहले ही बड़े ज़हीन थे।'

'अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो ?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आंखों से देखा–अब गुल्ली-डंडा क्यों खेलूंगा सरकार ! अब तो पेट के धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।

'आओ, आज हम-तुम खेलें। तुम पदाना, हम पदेंगे। तुम्हारा एक दांव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक बड़ा अफसर। हमारा और उसका क्या जोड़। बेचारा झेंप रहा था; लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी; इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे और अच्छी-खासी भीड़ लग जायगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहां रहेगा; पर खेले बगैर तो रहा नहीं जाता था। आखिर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से दूर जाकर एकान्त में खेलें। वहां कौन कोई देखने वाला बैठा होगा। मजे से खेलेंगे। और बचपन की उस मिठाई को खूब रस लेकर खायेंगे। मैं गया को लेकर डाकबंगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक

कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किये हुए था; लेकिन गया इसे अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था; वही सोचने में मगन था।

मैंने पूछा–तुम्हें हमारी कभी याद आती थी गया ? सच कहना। गया झेंपता हुआ बोला–मैं आपको क्या याद करता हजूर; किस लायक हूं। भाग में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।

मैंने कुछ उदास होकर कहा–लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुमने तानकर जमाया था; याद है न ?

गया ने पछताते हुए कहा–वह लड़कपन था सरकार, उसकी याद न दिलाओ।

'वाह ! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूं, न धन में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।''

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आये हैं। चारों तरफ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है जहां आकर हम किसी समय कमल पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झुमके बनाकर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड़ पर चढ़ गया और टहनी काट लाया। चट-पट गुल्ली-डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से निकल गयी। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप-ही-आप जाकर बैठ जाती थी। वह दाहिने-बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में ही पहुंचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो। नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली, सभी उससे मिल जाती थीं। जैसे उसके हाथों में कोई चुम्बक हो जो गुल्लियों को खींच लेता हो; लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह-तरह की धांधलियां कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। पहुंच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हालांकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती और वह ज़रा दूर पर गिर पड़ती, तो मैं झटपट उसे खुद उठा लेता और दोबारा टांड़ लगाता। गया वह सारी बे-कायदगियां देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे वह सब कायदे-कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था। गुल्ली उसके हाथ से निकल कर टन से डंडे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डंडे से टकरा जाना; लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं। कभी दाहिने जाती है, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घण्टे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डंडे में आ लगी। मैंने धांधली की, गुल्ली डंडे में नहीं लगी, बिलकुल पास

से गयी; लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असन्तोष न प्रकट किया :

'न लगी होगी।'

'डंडे में लगती तो क्या मैं बेईमानी करता ?'

'नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे !'

बचपन में मजाल था, कि मैं ऐसा घपला करके जीता बचता। यही गया गरदन पर चढ़ बैठता; लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है ! सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डंडे में लगी और इतने ज़ोर-से लगी जैसे बन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धांधली करने का साहस मुझे उस वक्त भी न हो सका; लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूं ? मेरा हरज ही क्या है। मान गया, तो वाह-वाह, नहीं तो दो-चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अंधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूंगा। फिर कौन दांव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा—लग गयी, लग गयी ! टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा—तुमने लगते देखा ? मैंने तो नहीं देखा।

'टन-से बोली है सरकार !'

'और जो किसी ईंट में लग गयी हो ?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला, इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसे ही था, जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डंडे में ज़ोर-से

लगते देखा था; लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हां किसी ईंट में लगी होगी। डंडे में लगती तो इतनी आवाज़ न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया; लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धांधली कर लेने के बाद, गया कि सरलता पर मुझे दया आने लगी; तो मैंने बड़ी उदारता से दांव देना तय कर दिया।

गया ने कहा—अब तो अंधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा, कल बहुत-सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदावे; इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दांव ले लो।'

'गुल्ली सूझेगी नहीं।'

'कुछ परवाह नहीं।'

गया ने पदाना शुरू किया; पर उसे अब बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टांड़ लगाने का इरादा किया; पर दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह दांव पूरा कर चुका ? बेचारा घंटा भर पदा; पर एक मिनट ही में अपना दांव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

'एक दांव और खेल लो। तुम पहले ही हाथ में हुच गये।'

'नहीं भैया, अब अंधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। क्या कभी खेलते नहीं ?'

'खेलने का समय कहां मिलता है भैया ?'

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुंच गये। चलते-चलते बोला—कल यहां गुल्ली-डण्डा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। आप भी आओगे ? जब आपको फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊं।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस-दस आदमियों की मण्डली थी। कई लड़कपन के साथी निकले; अधिकांश युवक थे जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मैं मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित हो गया। टांड़ लगाता, तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की-सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं ज़रूर रोने लगता उसके डण्डे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती।

पदने वालों में एक युवक ने धांधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली रोक ली थी। गया का कहना था—गुल्ली ज़मीन में लगकर उछली थी। पर दोनों में ताल ठोकने की नौबत आयी। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो ज़रूर मार-पीट हो जाती। मैं खेल में न था; पर दूसरों के इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब कुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धांधली की,

बेईमानियां कीं; पर उसे ज़रा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खिला रहा था। मुझे वह पदाकर कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अफसर हूं। यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। मैं अब उसका लिहाज पा सकता हूं, अदब पा सकता हूं, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था तब मैं उसका समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूं। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूं।

❑ ❑ ❑

# ठाकुर का कुआं

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी। गंगी से बोला–यह कैसा पानी है ? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है !

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लाया करती थी। कुआं दूर था; बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिलकुल न थी; आज पानी में बदबू कैसी ? लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। ज़रूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहां से ?

ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा। दूर ही से लोग डांट बताएंगे। साहू का कुआं गांव के उस सिरे पर है; परन्तु वहां भी कौन पानी भरने देगा ? कोई कुआं गांव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला–अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला थोड़ा पानी नाक बन्द करके पी लूं।

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी पीने से बीमारी बढ़ जायगी–इतना जानती थी; परन्तु यह न जानती थी कि पानी

को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली–यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा–दूसरा पानी कहां से लायेगी ?

'ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे ?'

'हाथ-पांव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मन-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है ! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे !'

इन शब्दों में कड़वा सत्य था। गंगी क्या जवाब देती; किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

## 2

रात के नौ बजे थे। थके-मांदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पांच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो न अब जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थीं। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमे में रिश्वत दे दी और साफ निकल गये। कितनी अक्लमन्दी से एक मार्के के मुकदमे की नकल ले आये। नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास मांगता, कोई सौ। यहां बे-पैसे-कौड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए।

इसी समय गंगी कुएं से पानी लेने पहुंची।

कुप्पी की धुंधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इन्तज़ार करने लगी। इस कुएं का पानी सारा गांव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबन्दियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा—हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं ? यहां तो जितने हैं एक-से-एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें; झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को मारकर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊंचे ! हां, मुंह से हमसे ऊंचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे हैं ! कभी गांव में आ जाती हूं, तो रस-भरी आंखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊंचे हैं !

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाती धक्-धक् करने लगी। कहीं देख ले तो गजब हो जाय ! एक लात भी तो नीचे न पड़े। वह बढ़ी और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर ! बेचारे महंगू को इतना मारा कि महीनों लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगार न दी थी ! उस पर ये लोग ऊंचे बनते हैं !

कुएं पर दो स्त्रियां पानी भरने आयी थीं। इनमें बातें हो रही थीं।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हां, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियां ही तो हैं!'

'लौंडियां नहीं तो और क्या हो तुम ? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं ? दस-पांच रुपये छीन-झपटकर ले ही लेती हो। और लौंडियां कैसी होती हैं!'

'मत जलाओ, दीदी! छिन भर आराम करने को जी तरस कर रह जाता है। इतना काम तो किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता। यहां काम करते-करते मर जाओ; पर किसी का मुंह ही सीधा नहीं होता।'

दोनों पानी भरकर चली गयीं, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं से जगत के पास आयी। बेफिक्र चले गये थे। ठाकुर भी दरवाजा बन्द कर अन्दर आंगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानता के साथ और समझ-बूझकर न गया होगा। गंगी दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न

हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियाअत की रत्ती भर उम्मीद नहीं। अन्त में देवताओं की याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता से। ज़रा भी आवाज़ न हुई। गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुंह तक आ पहुंचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेज़ी से उसे न ख़ींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुंह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गयी। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हलकोरे की आवाज़ें सुनाई देती रहीं।

ठाकुर 'कौन है, कौन है ?' पुकारते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।

❑ ❑ ❑

# दो भाई

प्रातःकाल सूर्य की सुहावनी सुनहरी धूप में कलावती दोनों बेटों को जांघों पर बिठा दूध और रोटी खिलाती थी। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुंह में कौर लिए, कई पग उछल-कूदकर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में उस प्रार्थना की रट लगाते थे, जिसमें एक पुराने सहृदय कवि ने किसी जाड़े के सताये हुए बालक के हृदयोद्गार को प्रकट किया है–

"दैव-दैव धाम करो तुम्हारे बालक को लगा जाड़ा"

मां उन्हें चुमकारकर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदय में प्रेम की उमंग थी और नेत्रों में गर्व की झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गले में बाँहें डाले खेलते थे। केदार की बुद्धि चुस्त थी, माधव का शरीर। दोनों में इतना स्नेह था कि साथ-ही-साथ पाठशाला जाते, साथ-साथ खाते और साथ-साथ रहते थे। दोनों भाइयों का ब्याह हुआ। केदार की बहू अमितभाषिणी और चंचला थी। माधव की वधू श्यामा सांवली-सलोनी, रूपराशि की खान थी। बड़ी-सी मृदुभाषिणी, बड़ी ही सुशीला और शान्तस्वभावा।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामा पर रीझे। परन्तु

कलावती का मन किसी से न मिला। वह दोनों से अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा का बहुत अंश इस व्यर्थ के प्रयत्न में व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलता का एक भाग श्यामा के शान्तस्वभाव से बदल ले।

दोनों भाई सन्तानवान हुए। हरा-भरा वृक्ष खूब फैला और फलों से लद गया। कुत्सित वृक्ष में केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीला-सा; मुरझाया हुआ; किन्तु दोनों अप्रसन्न थे। माधव को धन-सम्पत्ति की लालसा थी और केदार को सन्तान की अभिलाषा।

भाग्य की इस कूटनीति ने शनैः-शनैः द्वेष का रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कों को संवारने-सुधारने में लगी रहती, उसे सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती थी। बेचारी चम्पा को चूल्हे में जलना और चक्की में पिसना पड़ता। यह अनीति कभी-कभी कटु शब्दों में निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पा के क्रोध को शान्त करने के बदले और बढ़ाती। यहां तक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागने की राह न पाकर शिकारी की तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओं की भांति अलग हो गयीं। उस दिन एक ही घर में चूल्हे जले, परन्तु भाइयों ने दाने की सूरत न देखी और कलावती सारे दिन रोती रही।

कई वर्ष बीत गये। दोनों भाई जो किसी समय एक ही पालथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते थे और एक ही छाती से दूध पीते थे, उन्हें अब एक घर में, एक गांव में रहना

कठिन हो गया। परन्तु कुल की साख में बट्टा न लगे, इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की धधकी हुई आग को राख के नीचे दबाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगों में अब भ्रातृ-स्नेह न था। केवल भाई के नाम की लाज थी, मां अब भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देखकर आंसू बहाया करती। हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान था। कुसुम वही था परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोता देख दूसरा भी रोने लगता था। तब वह नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोता देख दूसरा हंसता और तालियां बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान् हो गये थे।

जब उन्हें अपने-पराये की पहचान न थी, उस समय यदि कोई छेड़ने के लिए एक को अपने साथ ले जाने की धमकी देता, तो दूसरा ज़मीन पर लोट जाता और उस आदमी का कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि भाई को मृत्यु भी धमकाती तो दूसरे की आंखों में आंसू न आते। अब उन्हें अपने-पराये की पहचान हो गयी थी।

बेचारे माधव की दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उस पर कुल मर्यादा का निर्वाह। हृदय चाहे रोये पर होंठ हंसते रहें, हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियां और आवश्यक वस्तुयें मोतियों के मोल। कुछ पाइयों की जमींदारी कहां तक सम्हालती। लड़कों का ब्याह अपने वश की बात थी, पर लड़कियों का विवाह कैसे टल सकता था ! दो पाई ज़मीन पहली कन्या के विवाह में भेंट हो गयी। उस पर भी बराती

बिना भात खाये आंगन से उठ गये। शेष दूसरी कन्या के विवाह में निकल गयी। साल भर बाद तीसरी लड़की का विवाह हुआ, पेड़-पत्ते भी न बचे। हां, अब की डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहर में वही सम्बन्ध है जो मांस और कुत्ते में।

इस कन्या का अभी गौना न हुआ था कि माधव पर दो साल के बकाया लगान का वारण्ट आ पहुंचा। कन्या के गहने गिरों रखे गये। गला छूटा। चम्पा इसी समय की ताक में थी। तुरन्त नये नातेदारों को सूचना दी, तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहां गहनों का सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक नाई और दो ब्राह्मण माधव के दरवाजे पर बैठ गये। बेचारे के गले में फांसी पड़ गयी। रुपये कहां से आवें न ज़मीन न जायदाद, न बाग न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभी का उठ चुका था। अब यदि कोई सम्पत्ति थी, तो केवल वही दो कोठरियां, जिनमें उसने अपनी सारी आयु बिताई थी, और उनका ग्राहक न था। विलम्ब से नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदार के पास आया और आंखों में आंसू भरे बोला–भैया, इस समय मैं बड़े संकट में हूं, मेरी सहायता करो।

केदार ने उत्तर दिया–मद्धू ! आजकल मैं भी तंग हो रहा हूं, तुमसे सच कहता हूं।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वर में बोली–अरे, तो क्या उनके लिए भी तंग हो रहे हैं ? अलग भोजन करने से क्या इज़्ज़त अलग हो जायगी ?

केदार ने स्त्री की ओर कनखियों से ताककर कहा–नहीं-नहीं मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है, तो क्या, कोई-न-कोई प्रबन्ध किया जायगा।

चम्पा ने माधव से पूछा–पांच बीस से कुछ ऊपर ही पर गहने रखे थे न ?

माधव ने उत्तर दिया–हां ब्याज सहित कोई सवा सौ रुपये होते हैं।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़ने में लग गये। चम्पा ने तत्त्व की बातचीत शुरू की–रुपया बहुत है; हमारे पास होता तो कोई बात न थी। परन्तु हमें भी दूसरे से दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाये-पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधव ने सोचा, यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ाने को होता; तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों ? बोला–लिखने-पढ़ने को मेरे पास है ही क्या ? जो कुछ जगह-जायदाद है, वह यही घर है।

केदार और चम्पा ने एक-दूसरे को मर्मभेदी-नयनों से देखा और मन-ही-मन कहा–क्या आज सचमुच जीवन की सारी अभिलाषाएं पूरी होंगी ? परन्तु हृदय की यह उमंग मुंह तक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरता से बोली–घर पर तो कोई महाजन कदाचित् ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे पर गंवई में तो काई सेंत में रहने वाला भी नहीं। फिर साझे की चीज़ ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पा की कठोरता से खेल बिगड़ न जाय। बोले–एक महाजन से मेरी पहचान है, वह कदाचित् कहने-सुनने में आ जाय।

चम्पा ने गर्दन हिलाकर इस युक्ति की सराहना की और बोली–पर दो-तीन बीस से अधिक मिलना कठिन है।

केदार ने गर्दन हिलाकर कहा–अरे, बहुत दबाने पर चार

बीस हो जाएंगे। और क्या।

अबकी चम्पा ने तीव्र दृष्टि से केदार को देखा और अनमनी-सी होकर बोली—महाजन ऐसे अन्धे नहीं होते।

माधव अपने भाई-भावज के गुप्त रहस्य को कुछ-कुछ समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहां से मिल गयी। बोला—और रुपये कहां से आवेंगे ?

चम्पा चिढ़कर बोली—और रुपयों के लिए और फिक्र करो ! सवा सौ रुपये इन दो कोठरियों के इस जन्म में कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजन से दिला दूं, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातों से सशंक हो गया। उसे आभास हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ता के साथ अड़कर बोला—और कौन-सी फिक्र करूं ? गहने होते तो कहता, लाओ रख दूं। यहां तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दस के लिए, क्या पचास के लिए, दोनों एक ही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाय, तो यहां तक स्वीकार है, परन्तु घर भी बेचूं और उस पर भी प्रतिष्ठा धूल में मिले, ऐसा मैं न करूंगा। केवल नाम का ध्यान है, नहीं एक बार नहीं कर जाऊं तो मेरा कोई क्या करेगा ? और सच पूछो तो मुझे अपने नाम की चिन्ता नहीं है। मुझे कौन जानता है ? संसार तो भैया को हंसेगा।

केदार का मुंह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर वाक्य-निपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गंवार में ऐसी दृढ़ता की आशा न थी। उसकी ओर आदर से देखकर बोली—लाला, कभी-कभी तुम भी लड़कों की-सी बातें करते

हो। भला इस झोंपड़ी पर कौन सौ रुपये निकालकर देगा ? तुम सवा सौ के बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूं। उतना ही मेरा भी तो है ? घर पर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हां, और रुपयों का प्रबन्ध हम आप कर देंगे। इज़्ज़त हमारी तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खाते में चढ़ा लिया जायगा।

माधव की इच्छाएं पूरी हुईं। मैदान मार लिया। सोचने लगा, मुझे तो रुपयों से काम है, चाहे एक नहीं, दस खाते में चढ़ा लो। रहा मकान, वह जीते जी नहीं छोड़ने का। प्रसन्न होकर चला। उसके जाने के बाद केदार और चम्पा ने कपट-भेष त्याग दिया और बड़ी देर तक एक-दूसरे को इस कड़े सौदे का दोषी सिद्ध करने की चेष्टा करते रहे। अन्त में मन को इस तरह सन्तोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नहीं, किन्तु भर कठौत तो है। फिर, हां, देखेंगे कि श्यामा रानी इस घर में कैसे राज करती हैं।

केदार के दरवाजे पर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघ-शक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एक ही जुए में चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ दिन हुए जब इनमें से एक चम्पा के मैके मंगनी गया था; तो दूसरे ने तीन दिन तक नांद में मुंह नहीं डाला। परन्तु शोक, एक गोद के खेले भाई एक छाती से दूध पीने वाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घर में रहना भी नहीं चाहते।

प्रातःकाल था। केदार के द्वार पर गांव के मुखिया और नम्बरदार विराजमान थे। मुन्शी दातादयाल अभिमान से

चारपाई पर बैठे रेहन का मसविदा तैयार करने में लगे थे। बार-बार कलम बनाते और बार-बार खत रखते, पर खत की शान न सुधती थी। केदार का मुखारविन्द विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखिया ने कहा—न भाई ऐसा हितू, न भाई ऐसा शत्रु। केदार ने छोटे भाई की लाज रख ली।

नम्बरदार ने अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तार ने कहा—भाई, सपूतों का यही काम है।

दातादयाल ने पूछा—रेहन लिखने वाले का नाम।

बड़े भाई बोले—माधव वल्द शिवदत्त ?

'और लिखाने वाले का ?'

'केदार वल्द शिवदत्त।'

माधव ने बड़े भाई की ओर चकित होकर देखा। आंखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नम्बरदार, मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है। बातचीत तो किसी साहूकार की थी। जब घर ही में रुपया मौजूद है तो इस रेहननामे की आवश्यकता ही क्या थी ? भाई-भाई में इतना अविश्वास। अरे, राम ! राम ! क्या माधव 80 रु. को भी महंगा है ? और यदि दबा ही बैठता, तो क्या रुपये पानी में चले जाते ?

सभी की आंखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानों आश्चर्य की अथाह नदी में नौकाएं डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजे की चौखट पर खड़ी थी। वह सदा केदार की प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोकरीति ने उसे अपने जेठ को आड़े हाथों लेने से रोका।

बूढ़ी अम्मां ने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाश की ओर देखा और माथा ठोंक लिया।

तब उसे उस दिन का स्मरण हुआ, जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोद में बैठे हुए उछल-कूद कर दूध-रोटी खाते थे। उस समय माता के नेत्रों में कितना अभिमान था, हृदय में कितनी उमंग और कितना उत्साह !

परन्तु आज, आह ! आज नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक-सन्ताप। उसने पृथ्वी की ओर देखकर कातर स्वर में कहा—हे नारायण ! क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही कोख में जन्म लेना था !

❑❑❑

# प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियां

मुंशी प्रेमचन्द की गिनती हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में की जाती है। 1880 में उनका जन्म वाराणसी के एक छोटे से गांव लमही में एक साधारण परिवार में हुआ था। उनका घर का नाम धनपतराय था। स्कूल में अध्यापन का कार्य करते हुए उन्होंने कहानियां और उपन्यास लिखने शुरू किये। उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ और एक दर्जन के लगभग उपन्यास लिखे जिनमें से **गोदान, ग़बन, सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प** और **निर्मला** बहुत प्रसिद्ध हैं। 1936 में उनका देहान्त हुआ।

उनकी चुनी हुई रोचक, सरल कहानियां चित्रों सहित प्रकाशित की गई हैं।

- शतरंज के खिलाड़ी
- सुजान भगत
- रानी सारंधा
- मां की ममता
- रामलीला
- सब से बड़ा तीर्थ
- रामकथा
- बड़े घर की बेटी
- पंच परमेश्वर
- बूढ़ी काकी
- शिकारी राजकुमार
- मन्दिर
- कुत्ते की कहानी
- जंगल की कहानियां
- दो बैलों की कथा
- नमक का दरोगा
- परीक्षा
- गुल्ली-डण्डा
- ईद का त्यौहार
- मेरी कहानी

**प्रत्येक का मूल्य पन्द्रह रुपए**

समाज शिक्षा प्रकाशन